॥ आक्रन्दमानगिरया शिवस्तुतिः ॥

.. AkrandamAnagirayA shivastutiH ..

sanskritdocuments.org

August 20, 2017

.. AkrandamAnagirayA shivastutiH ..

॥ आक्रन्दमानगिरया शिवस्तुतिः ॥

Sanskrit Document Information

Text title : AkrandanashivastutiH

File name : AkrandanashivastutiH.itx

Category : shiva

Location : doc_shiva

Author : shivakaula

Language : Sanskrit

Subject : philosophy/hinduism/religion

Transliterated by : Sanjay Chakravarty sanjaychak02 at gmail.com

Proofread by : Sanjay Chakravarty sanjaychak02 at gmail.com

Latest update : August 12, 2017

Send corrections to : Sanskrit@cheerful.com

Site access : http://sanskritdocuments.org

This text is prepared by volunteers and is to be used for personal study and research. The file is not to be copied or reposted without permission, for promotion of any website or individuals or for commercial purpose.

Please help to maintain respect for volunteer spirit.

August 20, 2017

sanskritdocuments.org

॥ आक्रन्दमानगिरया शिवस्तुतिः ॥

पण्डित शिव कौल कृता

(रोती हुई वाणी में भक्ति-भाव से भगवान शिव की आराधना)

आर्त भक्त अपने चंचल चित्त (मन) को कहता है–

रे चित्त! भीत! चपल! विपुलां विहाय
चिन्तां, समाश्रय पदद्वयमार्तबन्धोः ।
आक्रन्दमानगिरया परया च भक्त्या
जन्मादिदुःखशमनमभिप्रार्थयस्व ॥ १॥

अर्थ– संसार भय से पीडित और चंचल बने हुए हे मेरे मन! तुम सारी चिन्ता (संसार-बन्धन में डालने वाली वासनाएं) छोड दो । आर्त भक्तों के (एकमात्र) बन्धु (भगवान् शिव) के चरणद्वय की शरण लो । परम भक्ति और रोती हुई वाणी में (उससे) जन्म-मरण आदि दुःख शान्त करने के लिए प्रार्थना करो ।

[जन्म-मरण, शोक-मोह और क्षुत्-पिपासा - ये जीवभाव की छ-ऊर्मियां (धर्म) हैं । शिव इन ऊर्मियों से रहित है ॥]

किं त्वं मुधा । कथय संसरणाख्यघोरां-
गारेषु कातरतयाऽभिपचन् स्थितोऽसि ?
दैन्यं विहाय भवदुःखविमुक्तये त्वं
आराधनां कुरु शिवस्य, तथाऽत्र वक्ष्ये ॥ २॥

अर्थ– जरा कहो, क्यों तुम व्यर्थ ही संसार-चक्र नाम के जलते अंगारों में डरपोक बनकर सन्तप्त हुए ठहरे हो ? इस दीनता (असहाय-भाव) को छोडकर संसार दुःख से मुक्त होने के लिए भगवान शिव की आराधना में लग जाओ । (आराधना किस प्रकार करोगे-) वह मैं यहाँ कह देता हूँ । (आराधना इस प्रकार) ॥

हा किं न पश्यसि दृढैरपि पाशजालै-
र्मां हन्तुमिच्छति पशुमिव कालव्याधः ।
कालान्तकारक! महेश्वर! क्वासि, क्वासि ?
भीतं न पालयसि किं ? जगतां निवासिन् ॥ ३॥

अर्थ– महाकाल का अन्त करने वाले भगवान शिव! हाय, क्या नहीं देखते हो कि महाकाल अपने दृढपाश-जाल लेकर मुझे ऐसे ही मार डालने की इच्छा करता है जैसे एक शिकारी वन्य पशु को (मारने के लिए पीछे दौडता है)? हे महेश्वर! तुम कहाँ हो, कहाँ हो! हे तीनों जगत् में वास करने वाले (परमेश्वर)! (इस) भय से पीडित मुझ (अपने भक्त) की रक्षा क्यों नहीं करते हो ?॥

आः किं न उद्धरसि नाथ निमज्जमानं
मोहार्णवेऽतिगहने भवभारक्षिण्णम् ?
मा पश्य मत्कुकृतिमप्यतिगर्हितां च
वीक्षस्व स्वां महदनुग्रहशक्तिमेव ॥ ४॥

अर्थ– हे स्वामी! हाय, संसार-भार से परेशान (और) बहुत गहरे मोह समुद्र में डूबते हुए मुझ (ऐसे भक्त) का उद्धार क्यों नहीं करते हो ? बहुत निन्दा के योग्य भी मेरे कुकृत्यों की ओर मत देखो । अपनी महान अनुग्रह शक्ति की ओर ही (तो) ध्यान दो ॥

कष्टं करालदशनो ह्यपि कालव्यालो
दष्टुं महत्तरजवेन प्रधावति माम् ।
नष्टुं किमस्य तव शक्तिरपोहितैव
येनातुरं हि उरगाय ह्युपेक्षसे माम् ॥ ५॥

अर्थ– हाय कष्ट है, विकराल दाँत निकालकर कालरूपी साँप मुझे डसने को तेजी से दौड़ रहा है । इसका नाश करने के लिए आपकी शक्ति मानो छिप गई (मन्द पड़ी) है । जान पडता है कि साँप (को सुरक्षित रखने) के लिए मेरी ओर ध्यान नहीं देते (क्योंकि साँप आपके अंगों से लिपटे रहने के कारण आपको प्यारे हैं न) ॥

दग्धुं कुकर्मपवनेन च दीप्यमानः
कालानलोऽयमभितो ह्यचिरात्प्रयाति ।
भस्मीकरोत्यहह मां झटिति पिनाकिन् !
शान्तिं नयस्व सुकृपामृतवर्षणेन ॥ ६॥

अर्थ– मेरे कुकर्म रूप वायु से जाज्वल्यमान यह महाकाल रूप अग्नि

(मेरे) चारों तरफ तेजी से फैल रही है । हाय, हाय! यह मुझे शीघ्र ही भस्म कर डालेगी । हे पिनाकधारी शिव! अपने सत्कृपारूपी वर्षण से इस (कालरूप अग्नि) को शान्त कर दो ॥

रुग्नः लुठाम्यवनि भग्नकटीव सर्पः
कंदर्पदर्पहर! मे हरसि न दुःखम् ।
को वा परः त्वदपरः वरणार्हब्रूहि
यं त्वां विहाय कृपणः शरणां गमिष्ये ॥ ७॥

अर्थ– हे कामदेव के दर्प को हरण करने वाले शिव! मैं टूटी हुई कमर वाले साँप की तरह रोग-ग्रस्त होकर पृथ्वी पर लुढकते जा रहा हूँ आप मेरा दुःख दूर नहीं करते । आप ही बताइए कि आप से उत्कृष्ट और कौन है जो बेरोक (अनर्गल) अनुग्रह करने में समर्थ है जिसकी शरण में, आपको छोडकर, मेरे जैसा कृपण जा सकता है ।

[कृपण (कश्मीरी में क्रिपित्र) उसे कहते हैं जो उस अक्षर परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने के बिना ही शरीर त्याग करता है– 'यो वा एतदक्षरमविदित्वाऽस्माल्लोकात् प्रैति स कृपणः' ऋषि याज्ञवल्क्य बृहदारण्यकोपनिषद् में गार्गी के प्रति ऐसा कहते हैं ॥]

आर्तोऽस्म्यहं हि विलपामि त्वदङघ्रिलग्नः ।
त्वं तु सुविस्मृतिप्रदौषधिपानमग्नः ।
एतत् चरित्रमुभयोरवलोकमानाः
त्वां शीघ्रतोषित! कथं जगति स्तुवन्ति ॥ ८॥

अर्थ– मैं तो आर्त हूँ और आपके चरणों की शरण लेकर विलाप कर रहा हूँ, परन्तु आप भुला देने वाली औषधि को पीते मग्न (दिखाई देते) हैं (जो मेरे इस आर्तनाद की ओर कोई ध्यान नहीं देते हैं) हे शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले शिव! (हम दोनों का) यह चरित्र देखते हुए (लोग) कैसे आपकी स्तुति करते ही हैं ॥

शक्नोसि त्वं यदि न संसृतिदुःखमेतत्
हर्तुं समर्थयसि नार्थिनमुक्तरञ्च ।

नार्हामि चेत् तव कृपालवलेशमीश
शीघ्रं बहिष्कुरु तथापि प्रपंचकोशात् ॥ ९॥

अर्थ– हे ईश्वर! यदि आप मेरा यह संसार में आवागमन का दुःख दूर नहीं कर सकते और यदि (मुझ) प्रार्थना करने वाले (आर्त भक्त) को उत्तर देने में भी समर्थ नहीं हो, (इस प्रकार) यदि मैं आपकी कृपा का लेश-मात्र भी प्राप्त करने के योग्य नहीं हूँ, तो फिर जल्दी ही मुझे इस संसार रूप कोश (कोठरी) से बाहर कर दो (व्यंग्य में कहा है कि मुक्ति का भाजन बनाओ) ॥

याचे न वैश्रवणकोशसमाधिकारं
नो वाऽमरेन्द्रसमतां न दिवि विहारम् ।
भोगेच्छयापि भगवन्! न च सार्वभौमं
यच्चिन्तया तव मनः ननु खेदमायात् ॥ १०॥

अर्थ– हे भगवान्! मैं कुबेर के समान धनपति बनने का अधिकार आपसे नहीं माँगता हूँ न राजा इन्द्र के साथ समता और न स्वर्ग-लोक में रहने की माँग करता हूँ । मैं भोगों की इच्छा से भी सबसे बढकर नहीं बनना चाहता हूँ, जिन (माँगों) की चिन्ता से आपके मन में खेद (कष्ट) हो!॥

दीनोऽस्मि कर्मगतिना सरणौ निक्षिप्तः
जन्मजरामरणव्याधिशतैश्चतप्तः ।
त्वामर्थयामि गिरिजावर! एतदेव
मामुद्धराशु कृपया ननु कोऽत्र खेदः ॥ ११॥

अर्थ– मैं अपनी कर्म-गति से दीन-हीन होकर इस संसारचक्र में पडा हूँ जिसके फलस्वरूप मैं जन्म-जरा-मरण और सैकडों व्याधियों से संतप्त हूँ । हे गिरिजावर! (पार्वती पति) मैं (इस अवस्था में) आपसे केवल यही माँगता हूँ कि कृपा करके मेरा (इस दुःखमय संसार से) जल्दी उद्धार करो । इसमें (आपको) खेद ही क्या है ॥

त्वं चेन्न उद्धरसि मां हरसि न तापं
पापस्य स्वस्य फलमेव तु तद्विजाने ।

किंच जनास्तवगुणानुस्मृणे वदेरन्
नैवार्तत्राणकुशलो जटिलो कपाली ।१२॥

अर्थ– यदि आप मेरा उद्धार नहीं करते और (इस तरह) मेरे संताप को दूर नहीं करते तो मैं यह जानता ही हूँ कि यह मेरे अपने पाप का फल है! किन्तु आपके भक्तजन आपके गुणों का अनुस्मृन (चर्चा) करते समय कहेंगे ही कि यह जटाधारी शिव जो हाथ में कपाल लेकर स्वयं भिक्षा के लिए घूमता रहता है, आर्त भक्तों की (अनुग्रह द्वारा) रक्षा करने में कुशल नहीं हैं ॥

यच्च त्वया त्रिपुरधानवध्वंसकाले
यच्चान्तकान्तकरणे दहने स्मरस्य ।
दिव्यं बलमतुलमीश! प्रदर्शितं तत्
दीनस्य त्राणकरणावसरे क्व यातम् ॥ १३॥

अर्थ– हे ईश्वर! जो दिव्य (अलौकिक) और अतुल (जिसकी कोई बराबरी न हो ऐसा) बल आपके (क) त्रिपुरधानव का नाश करते समय दिखाया (ख) महाकाल का भी अन्त करने के समय दिखाया, और (ग) कामदेव को दग्ध करने के अवसर पर दिखाया, वह (अनुपम बल) मुझ शरण में आये हुए भक्त के समय कहाँ चला गया? (अर्थात् सर्वसमर्थ होकर मेरे समय क्यों असमर्थ जैसे अपने आपको बता रहे हो?) ॥

त्वं निर्बलोस्यप्यथवा बलवत्तरोऽसि
कर्त्तुं कृपां त्वमक्षमोस्यथवा क्षमोऽसि ।
स्वामिन् ! ममासि भवदङ्घ्रियुगं कथञ्चित्
प्राप्तोऽस्मि नाथ! शरणं न तु तं विमुञ्चे ॥ १४॥

अर्थ– आप निर्बल हो अथवा आप बहुत बलवान हो, आप कृपा (अनुग्रह) करने में असमर्थ हो अथवा आप (किसी-किसी पर) कृपा करने में समर्थ हो (- इन बातों से मेरा कोई अभिप्राय नहीं है । परन्तु) हे स्वामी! आप मेरे हो । हे नाथ! मैंने तो आपके चरणों की जोड़ी की शरण (किसी पूर्व पुण्य-पुञ्ज के परिपाक से और सत्गुरु के कृपा कटाक्ष से) ली है । मैं तो अब उस (शरण अर्थात् 'पकड') को नहीं छोड़ूँगा ॥

स्वामिन् ! विनापि विनयेन यदि त्वदग्रे
तीक्ष्णैः पदैः प्रकटयामि च स्वाभिसंधिम् ।
लज्जोज्झितत्वमपि तत् भगवन्! क्षमोऽसि
सोढुं भवान् पितुरिवार्भकदुर्वचांसि ॥ १५॥

अर्थ– हे स्वामी! यदि आपके सामने बडी तेज वाणी में मैं अविनय से ही (आपके साथ) अपना मेल (सत्तासामान्य भाव से एकता) प्रकट करता हूँ और वह भी लज्जा (शिष्टाचरण) को त्याग कर, तो भगवन्! वह आप ही सहन करने में समर्थ हो जैसे (लोकव्यवहार में) पिता ही अपने बालक के (अविनय से) कहे दुर्वचनों को सहन कर सकता है ॥

आक्रन्दनस्तुतिरियं शिवसन्निधाने
भक्त्या तु दीनमनसा पठति पुमान् यः ।
तस्य नगेन्द्रतनुजापतिराशुतोषः
दुर्वार दुःखशमनं दयया करोति ॥ १६॥

अर्थ– इस स्तुति का फल यह है कि जो भी साधारण पुरुष इस आक्रन्दनस्तुति को बड़ी भक्ति और विनम्र भाव से भगवान् शिव के सन्निधान पूजा-स्तुति के रूप में पढता है उस पर पार्वती-पति आशुतोष भगवान् शिव अपनी (अहैतुकी) दया से (कठारे संसार भय से पैदा हुआ) दुःख शान्त करते हैं अर्थात् शिव उस भक्त को मुक्ति का भाजन बनाते हैं ।

इति पण्डित शिवकौल कृता आक्रन्दनस्तुतिः समाप्ता ।

टिप्पणियाँ –
पूजा-स्तुति में भगवान् का चिन्तन (ध्यान) करना आवश्यक है । पूजादि कर्म सफल होते हैं । महर्षि पतञ्जलि ने कहा है- 'तज्जपस्तदर्थभावना' - भगवान् के नाम (ॐ) का जप उस (मन्त्र) के अर्थ को जानते हुए करने से सिद्धि मिलती है ॥

रचनाकार के बारे में –
यह सुन्दर तथा भावपूर्ण शिवस्तुति पितामह पण्डित शिवकौल की कृति है । भगवान लक्ष्मण जू ने इसे 'अलौकिक स्तुति' कह कर सराहा है । पं. शिवकौल वैकुण्ठवास पचास वर्ष

से कुछ कम आयु में, जून १९२२ ई. में हुआ था । इस तरह उनका जन्म १८७२ ई. के आप-पास हुआ होगा । उनके गुरु महाराज हरिद्वार पातञ्जलाश्रम के स्वामी तेजनाथ थे । अपने गृहस्थ का यथायोग्य निर्वाह करते हुए उन्हें मूर्तिकला तथा चित्रकला में भी रुचि थी । योगचर्या, सत्संग तथा वेदान्त श्रवण की ओर अधिक आकृष्ट थे । श्रीनगर के प्रसिद्ध विद्वद्वर्य पं. सुनकाक राजदान से वेदान्त शास्त्रों का अध्ययन किया था । इन बातों का मुझे युवा होने पर - अपनी दादी जी स्वर्गीया अमरावती से पता चला था । शिवस्तुति और माण्डूक्योपनिषद् गौडपाद कारिकाओं का कश्मीरी भाषा में पद्यानुवाद, इनकी पाण्डुलिपियां सुरक्षित हैं ।

Encoded and proofread by Sanjay Chakravarty sanjaychak02 at gmail.com

.. AkrandamAnagirayA shivastutiH ..

Searchable pdf was typeset using XeTeXgenerateactualtext feature of XeLaTeX 0.99996

on August 20, 2017

Please send corrections to *sanskrit@cheerful.com*